Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 1 | (Jan – Mar 2026)

दलित आलोचना का स्वरूप और विविध प्रतिमान

भगवान साहु
सह आचार्य, हिंदी, डॉ भीमराव अंबेडकर राजकीय, स्नातकोत्तर महाविद्यालय,निंबाहेडा (राजस्थान)
निंबाहेडा (राजस्थान)) 312601

शोध सारांश:

हिंदी दलित आलोचना हिंदी साहित्य की एक सशक्त धारा है जिसने परंपरागत आलोचनात्मक सौंदर्यबोध और मानदंडों को चुनौती देकर नए साहित्यिक प्रतिमानों का निर्माण किया है। दलित आलोचना के स्वरूप में दलित लेखकों के अनुभव और सामाजिक न्याय की आकांक्षा केंद्र में है। यही कारण है कि आलोचना में जो प्रतिमान उभर कर सामने आए हैं वह समाजपरक और परिवर्तनकारी है। इसकी मुख्य विशेषताओं में दलित केंद्रित परिप्रेक्ष्य और सामाजिक प्रतिबद्धता है। साहित्य में दलित दृष्टि की सार्थकता को समझने के लिए दलित आलोचना के विभिन्न प्रतिमानों की परख आवश्यक है। दलित साहित्य के अपने सौंदर्य बोध है और यह सौंदर्य बोध पारंपरिक प्रतिमानों से भिन्न दलितों की सोच और व्यवहार से जुड़ा हुआ है। दलित आलोचक इसे इतिहास लेखन की वर्चस्वशाली परंपरा मानते हुए इसे चुनौती देते हैं और संपूर्ण परंपराओं और विरासत का पुनर्मूल्यांकन चाहते हैं। इस क्रम में साहित्य में दलित चेतना के बीज और उसके स्वर की पड़ताल वे स्वयं के मानदंडों, प्रतिमानों और सौंदर्य बोध के आधार पर चाहते हैं। दलित आलोचना की इस परिवर्तनकामी आकांक्षा ने एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। इससे साहित्य के मूल्यांकन का एक नया सौंदर्य शास्त्र विकसित हुआ है। प्रस्तुत शोध आलेख में दलित आलोचना के स्वरूप एवं उसके विविध प्रतिमानों की गहन एवं गवेषणात्मक पड़ताल प्रस्तुत की गई है।

बीज शब्द: सामाजिक न्याय, वर्चस्वशाली परंपरा, परिवर्तनकामी आकांक्षा, परिप्रेक्ष्य, प्रतिमान, सौंदर्यबोध, अस्मिता निर्माण, दमनकारी संरचना, मिथकीय संरचना, संप्रेषणीयता, विध्वंस और सृजन।

मूल आलेख:

समकालीन रचनाशीलता के प्रसंग में दलित लेखन की पहचान शुरू से ही आंदोलनधर्मी रही है, जिसके आयामों पर स्पष्टता लाने में दलित आलोचना ने निर्णायक भूमिका निभाई है। अपने रचनात्मक और आलोचनात्मक कार्यों से दलित आलोचकों ने भारत के दलित समाज और साहित्य के सम्मुख उपस्थित संकटों, सवालों और चुनौतियों को वैचारिक परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया है। दलित आलोचना का स्वरूप साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता के मूल्यों में निहित है, जो पुराने पड़ गए एवं अप्रासंगिक हो गए 'कला कला के लिए' साहित्यिक सिद्धांत का विरोध करते हुए, प्रतिरोधात्मक स्वरूप के साथ साहित्य की व्याख्या करती है। दलित केंद्रित परिप्रेक्ष्य, जो महान विचारक महात्मा ज्योतिबा फुले और बाबा साहब अंबेडकर के विचारों से अनुप्राणित है, दलित आलोचना का केंद्रीय परिप्रेक्ष्य है। सामाजिक न्याय और संवैधानिक मूल्य इस साहित्यिक आलोचना का प्रस्थान बिंदु है। अतः दलित आलोचना साहित्य के मूल्यांकन में दलितों के जीवन, उसकी पीड़ा, संघर्ष और अनुभवों को केंद्र में रखती है।

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य और आलोचना का उद्भव केवल साहित्यिक या सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं है, अपितु यह सामाजिक न्याय, समानता और वंचित वर्ग की आवाज को केंद्र में लाने की ऐतिहासिक प्रक्रिया भी है। इसलिए दलित आलोचना का स्वरूप साहित्य के पारंपरिक आलोचनात्मक प्रतिमानों से भिन्न है जो दलित समाज की पीड़ा, अनुभव, शोषण और प्रतिरोध जैसे दलित जीवन की यथार्थ परकता को साहित्य मूल्यांकन का कसौटी मानती है। वह साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का साधन मानती है। साहित्यिक आलोचना में प्रतिमान शब्द का प्रयोग उन बौद्धिक या सैद्धांतिक ढाँचों के लिए

किया जाता है जिनके आधार पर साहित्य का मूल्यांकन और व्याख्या की जाती है। दलित आलोचना ने साहित्य के मूल्यांकन के लिए कई नए प्रतिमान विकसित किए हैं जो पारंपरिक साहित्यिक प्रतिमानों से बिल्कुल भिन्न है। दलित साहित्य, दलित जीवन के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने का माध्यम ही नहीं, उसे पहचानने का एक साधन भी है। सामाजिक व्यवस्था और विषमता के विरूद्ध आन्दोलन खड़ा करके एक नए समाज का निर्माण करना दलित साहित्य का उद्देश्य है।

जन्म पर आधारित भेद-भाव से त्रस्त लोगों के अस्मिता निर्माण की चिंता, वर्णाश्रम समाज व्यवस्था की गुलामी से मुक्ति का आग्रह और स्वतंत्र होने की चेतना से उत्प्रेरित और प्रभावित होकर दलित साहित्य का उदय हुआ है। यही कारण है कि अपनी अस्मिता को उभारने के लिए और जाति विहीन समाज का निर्माण करने के लिए दलित साहित्यकार नए इतिहास दर्शन, समाज शास्त्र तथा नई रचना प्रक्रिया के द्वारा साहित्य लिख रहे हैं और अपने विचारों, अपनी आकांक्षाओं को प्रस्तुत करने के लिए नए प्रतीकों, बिम्बों और मिथकों का विकास कर रहे हैं, जो परंपरावादी साहित्य से पूर्णतया भिन्न है। सात्र ने लिखा है- "लेखन केवल लिखना ही नहीं, एक कार्रवाई है, और बुराई के खिलाफ मनुष्य के सतत् संघर्ष में लेखन को सायास एक हथियार की तरह इस्तेमाल करना चाहिए। लेखक को यह बात समझनी चाहिए।"[1] सात्र के इस विचार से प्रेरित होकर दलित साहित्यकारों ने युद्ध को प्रतीक मानकर लेखन किया है और युद्ध और संघर्ष को साहित्य में स्थापित करने का प्रयत्न किया है ।

संघर्ष और नए इतिहास की परिकल्पना

समकालीन दलित साहित्य आलोचना अनुनय-विनय की भाषा से आगे बढ़कर संघर्ष और प्रतिरोध की भाषा बोलती है। यह नया इतिहास रचने की घोषणा करती है, ऐसा इतिहास जो समता और न्याय पर आधारित हो। "तनी मुट्ठियाँ" जैसे प्रतीक इस संकल्प का द्योतक हैं कि दलित समाज अब निष्क्रिय पीड़ित नहीं, बल्कि सक्रिय परिवर्तनकारी शक्ति है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता 'तनी मुट्ठियाँ' में एक नए इतिहास की रचना का आह्वान है-

"मेरी पीढी ने अपने सीने पर

खोद लिया है- संघर्ष

जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं

विद्रोह की चिंगारी फूटेगी

जलती झोपड़ी से उठते धुँए में

तनी मुट्ठियाँ तुम्हारे तहखाने में

नया इतिहास रचेगी।"[2]

मलखान सिंह की कविताओं में यह प्रतिरोध अधिक तीव्र रूप में व्यक्त होता है, जहाँ वे ब्राह्मणवादी परंपराओं और अतीत की दमनकारी संरचनाओं को खुली चुनौती देते हैं-

"तो सुनो वशिष्ठ

द्रोणाचार्य, तुम भी सुनो

हम तुमसे घृणा करते हैं,

तुम्हारे अतीत

तुम्हारी आस्थाओं पर थूंकते है।"[3]

फिर यह चेतावनी कि-

"सुनो ब्राह्मण

हमारी दासता का सफर

तुम्हारे जन्म से शुरू होता है

और इसका अन्त भी तुम्हारे अन्त के साथ होगा।"[4]

यह स्वर किसी व्यक्तिगत घृणा का परिणाम नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति है। संघर्ष और विद्रोह के इस दौर में वर्णाधारित सामाजिक विषमता को पुष्ट करने वाली मिथकीय संरचनाएँ भी दलित कवियों के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती रही हैं। यही कारण है कि दलित कवि इन मिथकीय प्रतिमानों को भी आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हुए उन्हें प्रश्नों के कटघरे में खड़ा करते हैं। डॉ. दयानंद बटोही की कविता 'द्रोणाचार्य सुनें, उनकी परंपरा सुनें' में एकलव्य की ऐतिहासिक पीड़ा को समकालीन यथार्थ से जोड़कर देखा गया है। कवि यह संकेत करते हैं कि आज भी शिक्षण संस्थानों में दलित विद्यार्थियों की प्रतिभा को कुंठित करने के लिए अनेक 'द्रोणाचार्य' सक्रिय हैं। इस प्रकार एकलव्य की कथा केवल अतीत की घटना न रहकर वर्तमान सामाजिक संरचना की विडंबना का प्रतीक बन जाते हैं –

"अँधेरे की गहन गुफा को घाव सहने दो,

जाओ द्रोण, जाओ, दर्द को हरियाने दो।

एकलव्य में पहले था, आज भी हूँ,

अब जान गया हूँ-अँगूठा दान क्यों माँगते हो?"[5]

इस विचारधारा की सशक्त अभिव्यक्ति रत्नकुमार सांभरिया की लघुकथा 'द्रोणाचार्य ज़िंदा है' में भी मिलती है, जहाँ पौराणिक प्रसंग समकालीन सामाजिक अन्याय का रूपक बन जाता है। कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, मलखान सिंह, जयप्रकाश कर्दम आदि रचनाकारों की कृतियों में भी पारंपरिक मिथकों का पुनर्पाठ, उनका विखंडन तथा नवीन मिथकों और प्रतिमानों का सृजन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस क्रम में कंवल भारती की कविता 'शम्बूक' का यह अंश विशेष रूप से उल्लेखनीय है –

"शम्बूक,

तुम्हें यह ज्ञात नहीं था कि

तुम्हारे वध पर

देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की थी

और कहा था—

'अत्यंत उचित, अत्यंत उचित।'

क्योंकि तुम्हारी हत्या

दरअसल दलित चेतना की हत्या थी,

स्वतंत्रता, समानता और न्याय-बोध की हत्या थी।"[6]

उल्लेखनीय है कि दलित साहित्य, दलित आन्दोलन की उपज है और दलित आन्दोलन स्वयं सांस्कृतिक परिवर्तनों से जुड़ा हुआ एक व्यापक सामाजिक आन्दोलन है। अतः संस्कृति में व्याप्त असमानताओं को उजागर कर सामाजिक समानता की स्थापना करना भी दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है। इस प्रक्रिया में सांस्कृतिक प्रतिमानों के पुनर्मूल्यांकन और परिवर्तन की संभावनाएँ स्वाभाविक रूप से उभरती हैं। सांस्कृतिक प्रतिमानों के रूप में रामायण और महाभारत में वर्णित पात्रों में से दलित साहित्यकार अपने वर्गीय चरित्रों की पहचान करते हैं तथा शम्बूक, एकलव्य और सत्यकाम जैसे पात्रों को नए प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। इन पात्रों को वे प्रतिरोध, स्वाभिमान और सामाजिक चेतना के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. तेजसिंह लिखते हैं- "ब्राह्मणवादी व्यवस्था के समर्थकों द्वारा शम्बूक का वध और एकलव्य का अंगूठा कटवाने की घटना, दलितों में विकसित होती सामाजिक चेतना को आरम्भ में ही समाप्त कर देने का षड्यंत्र है। यही कारण है कि शम्बूक और एकलव्य दलित कविता में सशक्त सामाजिक चेतना के प्रतीक रूप में उभरते हैं। लगभग प्रत्येक दलित कवि ने इन्हें अपनी चेतना का अंग मानकर विद्रोही प्रतीकों के रूप में अपनाया है। दलित कवि की दृष्टि में शम्बूक भले ही पारंपरिक अर्थों में इतिहास-पुरुष न हो, किन्तु वह इतिहास-सत्य का प्रतिनिधि है, जो असंख्य जागृत चेतनाओं का प्रतीक बन जाता है।"[7]

प्रख्यात दलित समीक्षक रमणिका गुप्ता की मान्यता है कि "दलित साहित्यकार पौराणिक मिथकों को तोड़कर, शास्त्रीय प्रतीकों को नकारते हुए, उन्हें बेनकाब कर, उनके सच को उजागर करता है। दलित साहित्य की कविता, कहानी व उपन्यासों में अथवा आलोचनाओं में पुराने मिथकों एवं प्रतीकों को तोड़कर नया अर्थ देने की प्रक्रिया एवं मुखर प्रवृति है। ये शास्त्रीय मिथकों के झूठ को, सवर्णों के जातीय अह्म को गौरवान्वित करने के लिए गढ़े गए प्रतीकों और मिथकों के तिलस्म को तोड़कर, झूठ को झूठ कहकर उनके चमत्कार को खत्म ही नहीं करता, बल्कि साथ ही साथ वह उन्हें नया अर्थ, नई परिभाषा भी देते चलता है। ये प्रवृति ऐसे नए समाज के निर्माण करने में सहायक हो रही है जो भारतीय मानसिकता की जड़ता और कुंठा को तोड़े-जहाँ कोई युधिष्ठिर जुए में पत्नी को हारकर 'धर्मराज' न कहलाए, जहाँ कोई गुरु एकलव्य का अँगूठा कटाकर भी गुरु बना न रह सके, जहाँ पत्नीत्यक्ता शंबूक हंता, बाली छलता राम मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं कहलाए। हिन्दी दलित साहित्य में कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, मलखान सिंह, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. एन. सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि कवियों की अनेक कविताओं में मिथकों का भंजन, नए प्रतीकों का सृजन देखने को मिलता है।"[8]

दलित दृष्टिकोण से राम द्वारा शम्बूक-वध की घटना को केवल एक पौराणिक प्रसंग के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की आकांक्षा के दमन के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। यह प्रसंग समता, स्वतंत्रता और न्याय-बोध के निषेध का रूपक बन जाता है, जबकि शम्बूक का चरित्र अन्याय के विरुद्ध संघर्ष और आत्मबलिदान का प्रतीक बनकर उभरता है -

"शम्बूक

तुम आज भी सच हो

आज भी दे रहे हो शहादत

सामाजिक परिवर्तन के यज्ञ में।"[9]

लेकिन शम्बूक का संघर्ष व्यर्थ नहीं जाता है और वह दलित कविता को रूढिगत व्यवस्था से टकराने की ताकत देता है-

"है महामानव शम्बूक

तुम आज भी मरे नहीं हो

जीवित हो हमारी स्मृतियों में

जीवित हो हमारी आशाओं-आकांक्षाओं में

जो खड़ी हो उठती है बार-बार लगातार

टकराने को उन व्यवस्थाओं से

रोकती है जो हमारे विकास के पथ को।"[10]

स्पष्ट है कि दलित कविता मुख्यधारा की कविता की अर्थवत्ता पर सवाल उठाते हुए, एक नयी संवेदना के साथ, नऐ आयाम की तलाश करते हुए, कविता में नए प्रतीक, नए बिम्ब और मिथकीय व्यापारों में आधुनिकता लाते हुए एक नए सौन्दर्यबोध के निर्माण की ओर अग्रसर है। यहाँ सौन्दर्य का आधार आलंकारिक चमत्कार या शास्त्रीय मर्यादाएँ नहीं, बल्कि जीवनानुभव की प्रामाणिकता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता और सामाजिक प्रतिबद्धता है। दयानन्द बटोही की पंक्तियाँ—

"लोग कहते हैं

नीम जैसा कड़वा बोलता हूँ

मैं सच कहता हूँ

अपने अंदर की परत खोलता हूँ।"

दलित आलोचना, दलित साहित्य की इसी सहज और निर्भीक अभिव्यक्ति को उद्घाटित करती हैं। यद्यपि अभिजात्य साहित्यिक वर्ग द्वारा इस शैली पर प्रश्नचिह्न लगाए गए, तथापि इसकी संप्रेषणीयता और जीवन-सत्य से जुड़ाव ही इसका वास्तविक सौन्दर्य है। वस्तुतः दलित साहित्य का अपना विशिष्ट सौंदर्य-बोध है। यह सौंदर्य-बोध दलितों की जीवन-दृष्टि, अनुभवों और व्यवहार से गहराई से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि दलित आलोचक सांस्कृतिक प्रतिमानों में उन चरित्रों और प्रतीकों को प्रमुखता देते हैं, जिन्होंने प्रचलित ब्राह्मणवादी मिथकों और सत्ता-संरचनाओं को चुनौती दी है। उदाहरणस्वरूप, शंबूक और एकलव्य दलित साहित्य में महत्वपूर्ण प्रतिमान के रूप में स्थापित हैं। अतः जब रामराज्य की चर्चा होती है, तो दलित आलोचना शंबूक को नैतिक रूप से श्रेष्ठ ठहराती है और जब महाभारत का प्रसंग आता है, तो एकलव्य को महानता का प्रतीक माना जाता है। आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन और नेतृत्व की बात होने पर दलित आलोचक महात्मा फुले और बाबा साहेब आंबेडकर को प्रमुखता से स्मरण करते हैं; वहीं धर्म के संदर्भ में महात्मा बुद्ध को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

दरअसल, दलित आलोचना की दृष्टि और उसका वैचारिक आंदोलन इन्हीं आधारों से प्रेरणा ग्रहण करता है। इसी प्रेरणा के आधार पर दलित आलोचक संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की ऐतिहासिक व्याख्या करते हैं और इतिहास-लेखन की एक नई पद्धति की आवश्यकता पर बल देते हैं। चूँकि इतिहास-लेखन की परंपरा लंबे समय तक एक वर्चस्वशाली वर्ग के दृष्टिकोण से निर्मित रही है, इसलिए दलित आलोचक समस्त परंपराओं और विरासत के पुनर्मूल्यांकन की मांग करते हैं।

दलित आलोचना की इस परिवर्तनकामी आकांक्षा ने हिंदी साहित्य को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। इससे साहित्य के मूल्यांकन का एक नया सौंदर्य शास्त्र विकसित हुआ है, जो केवल साहित्य को ही नहीं बदलती, बल्कि समाज को देखने

के हमारे नजरिए को भी बदलती है। पारंपरिक हिंदी आलोचना में प्रतिमान अक्सर रस, अलंकार, छंद और सौंदर्य के इर्द-गिर्द ही निर्मित हुए हैं। दलित आलोचना इस पारंपरिक आलोचना के सौंदर्य बोध और मानदंडों को चुनौती देती है और अनुभव आधारित समाज परक और परिवर्तनशील नए और निरंतर गतिशील प्रतिमान गढ़ती है। दलित आलोचना में शुरुआती विकास के लिए सौंदर्य मानकों का सवाल केंद्रीय था। सौंदर्य और साहित्यिक मूल्य की पारंपरिक अवधारणाएँ अक्सर उच्च जाति की संवेदनाओं और अनुभवों को दर्शाती थीं। शुरुआती दलित आलोचकों ने वैकल्पिक सौंदर्य ढाँचे विकसित करने का काम किया जिससे दलित साहित्य की विशिष्ट विशेषताओं को स्थापित किया जा सकें। इसमें पारंपरिक सौंदर्य सिद्धांतों की आलोचना और साहित्यिक कार्यों के मूल्यांकन के लिए नए मानदंडों का विकास दोनों शामिल थे। इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दलित चिन्तक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित साहित्य का प्रतिमान गढ़ते हुए 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'(2001) नामक पुस्तक की रचना की। दलित आलोचना के सैद्धांतिक ढाँचे को समृद्ध करने में पुस्तक मददगार साबित हुई ।

दलित आलोचना के सौंदर्य शास्त्रीय प्रतिमानों में नारीवादी प्रतिमान की स्थापना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जिसने दलित स्त्री अस्मिता को नई आवाज दी है। हिंदी दलित साहित्य आलोचना में दलित स्त्रीवादी आलोचना एक महत्त्वपूर्ण विकसित धारा है, जिसमें दलित स्त्री की 'दोहरी शोषण' के लिए जिम्मेदार पितृसत्तावादी मानसिकता की पड़ताल नए संदर्भों और नए अर्थों में की गई है। इस प्रतिमान में दलित साहित्य विमर्श में विमर्श के भीतर एक और विमर्श को जन्म दिया है। रजनी तिलक, विमल थोरात, रजत रानी 'मीनू', अनिता भारती, रजनी दिसोदिया जैसी महत्त्वपूर्ण दलित स्त्रीवादी आलोचकों ने जाति और स्त्री प्रश्न के साथ-साथ पितृसत्तात्मक दलित समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करते हुए दलित स्त्रियों की अस्मिता, संघर्ष और रचनात्मकता को सामने लाया है। स्त्री दृष्टि से साहित्य के पुनर्पाठ की शुरुआत यहीं से होती है जिसे 'दलित स्त्रीवाद' के नाम से भी जाना जाता है। नारीवादी प्रतिमानों की स्थापना इस नए सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमानों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसने दलित अस्मिता को नई आवाज दी है।

प्रतिमानों और सौन्दर्यबोध को लेकर सवर्ण और दलित आलोचकों के मध्य विमर्श आज भी जारी है। दलित आलोचकों में डॉ. धर्मवीर (कबीर के आलोचक, कबीर के कुछ और आलोचक, सूत न कपास, कबीर और रामानंदः किंवदंतियाँ, कबीरः बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, कबीर नई सदी में), ओमप्रकाश वाल्मीकि (दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सफाई देवता), कँवल भारती (दलित विमर्श की भूमिका, दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, दलित साहित्य की अवधारणा, दलित धर्म की अवधारणा और बौद्धधर्म, जाति धर्म और राष्ट्र, दलित राजनीति और साहित्य), मोहनदास नैमिशराय (अम्बेडकरः विरोधियों के चक्रव्यूह में, स्वतंत्रता संग्राम के दलित क्रांतिकारी), श्यौराज सिंह 'बैचेन' (दलित साहित्य में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना, हिन्दी पत्रकारिता पर अम्बेडकर का प्रभाव, सामाजिक न्याय और दलित साहित्य (संपादित), चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, जयप्रकाश कर्दम (लोकतंत्र में भागीदारी का सवाल और दलित विमर्श की भूमिका), चन्द्रभान प्रसाद (दलित डायरी), डॉ.एन.सिंह (निम्न वर्गीय मेरा दलित चिंतन, दलित साहित्य के प्रतिमान, दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम-संपादित), डॉ. तेज सिंह (आज का दलित साहित्य, अम्बेडकरवादी साहित्य की अवधारणा), सूरज बड़त्या (सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्य शास्त्र), आर.डी. आनंद (दलित प्रश्न और मार्क्सवाद), रत्न कुमार सांभरिया (मुंशी प्रेमचंद और दलित समाज), ईश कुमार गंगानिया (अस्मिताओं के संघर्ष में दलित समाज), रामायन राम (डॉ. अम्बेडकरः चिन्तन के बुनियादी सरोकार) प्रमुख हैं।

हिन्दी दलित साहित्य में दलित स्त्रीवाद की वैचारिक प्रगति और उसकी आलोचनात्मक क्षमता का सबूत जिन लेखिकाओं में दिखाई देता है उनमें प्रमुख हैं- रजनी तिलक (समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन– महिला लेखन का संकलन और संपादन तीन खण्डों में, दलित स्त्री विमर्श और पत्रकारिता, अम्बेडकर और स्त्री चेतना के दस्तावेज) रजत रानी 'मीनू' (नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, हिन्दी दलित कथा साहित्यः अवधारणाएं एवं विधाएँ, समकालीन भारतीय दलित महिला

लेखन, दलित दखल-संपादित श्यौराज सिंह बैचेन के साथ), कुसुम मेघवाल (हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग), विमल थोरात (दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर), अनिता भारती (समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध), रजनी दिसोदिया (साहित्य और समाज: कुछ बदलते सवाल) आदि प्रमुख हैं। इन स्त्रीवादी आलोचकों ने न केवल साहित्य की आलोचना की है, बल्कि साहित्य में नए प्रतिमान की खोज करते हुए दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र, सौन्दर्यबोध एवं दलित साहित्य के समाजशास्त्र के मार्ग को भी प्रशस्त किया है जो परंपरा निर्मित सौन्दर्यशास्त्र और प्रतिमान से भिन्न है।

निष्कर्ष:

स्पष्टतः हिंदी दलित साहित्य और आलोचना मुख्यधारा के साहित्यिक विमर्श को चुनौती देते हुए एक नई संवेदना, नए प्रतीक और नए बिंबों के माध्यम से साहित्यिक परिदृश्य को समृद्ध कर रही है। यह केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का सशक्त माध्यम है। इसका उद्देश्य पुरानी विषमतामूलक संरचनाओं का विघटन कर समतामूलक समाज की स्थापना है। यह विध्वंस और सृजन—दोनों प्रक्रियाओं का समन्वय है। यह अतीत की पीड़ा को वर्तमान की चेतना में रूपांतरित कर भविष्य के न्यायपूर्ण समाज की परिकल्पना करती है। इसी में इसकी साहित्यिक और सामाजिक सार्थकता निहित है।

संदर्भ:

1. अर्जुन डांगले (सं) पॉयजंड ब्रेड, दिल्ली, ओरिएंट लांगमैन, 1982
2. जयप्रकाश कर्दम (सं.): दलित साहित्य – 2000, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ – 24
3. कँवल भारती (सं.): दलित निर्वाचित कविताएँ– साहित्य उपक्रम, दिल्ली, 20-51
4. कँवल भारती (सं.): दलित निर्वाचित कविताएँ – साहित्य उपक्रम, दिल्ली, 2012, पृष्ठ -48
5. डॉ. दयानंद बटोही: द्रोणाचार्य सुने: उनकी परंपराएँ सुने (कविता कोश से साभार)
6. कँवल भारती (सं.): दलित निर्वाचित कविताएँ – साहित्य उपक्रम, दिल्ली, 2012, पृष्ठ - 213
7. डॉ. तेज सिंह (सं.): आज के समय की दलित कविता – अतिशय प्रकाशन, दिल्ली, 2002, सम्पादकीय पृष्ठ
8. रमणिका गुप्ता - दलित चेतना: साहित्यिक और सामाजिक सरोकार, समीक्षा पब्लिसिंग, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 82-83
9. कँवल भारती (सं.): दलित निर्वाचित कविताएँ – साहित्य उपक्रम, दिल्ली, 2012, पृष्ठ – 214 - 215
10. जयप्रकाश कर्दम (सं.): दलित साहित्य – 2000, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ – 41